



## National Journal of Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177

NJHSR 2025; 1(63): 280-284

© 2025 NJHSR

www.sanskritarticle.com

**डॉ. संतोष कुमार उपाध्याय**

शोधच्छात्र, पंचकर्म विभाग,

आयुर्वेद संकाय, चिकित्सा विज्ञान संस्थान,

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

**प्रो. जय प्रकाश सिंह**

प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, पंचकर्म विभाग,

आयुर्वेद संकाय, चिकित्सा विज्ञान संस्थान,

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

### गृध्रसी (साइटिका) के प्रबंधन में शिरावेधन का नैदानिक

### महत्व: एक एकीकृत समीक्षा

डॉ. संतोष कुमार उपाध्याय, प्रो. जय प्रकाश सिंह

**सारांश:**

गृध्रसी आयुर्वेद में वर्णित एक प्रमुख वातव्याधि है, जिसकी तुलना आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में साइटिका (Sciatica) से की जाती है। यह रोग कटि, स्फिक, ऊरु, जानु, जंघा एवं पाद में तीव्र वेदना, स्तम्भ, स्पन्दन तथा चलने में कठिनता उत्पन्न करता है। आयुर्वेद में गृध्रसी के उपचार हेतु स्नेहन, स्वेदन, बस्ति, अग्निकर्म तथा शिरावेधन जैसी विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों का उल्लेख मिलता है। इनमें शिरावेधन को विशेष महत्व दिया गया है। प्रस्तुत एकीकृत समीक्षा का उद्देश्य गृध्रसी के प्रबंधन में शिरावेधन की शास्त्रीय उपयोगिता एवं कार्यविधि के आधार पर उसकी प्रभावशीलता का विश्लेषण करना है। विभिन्न आयुर्वेदिक ग्रंथों तथा शास्त्रीय प्रमाणों के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि शिरावेधन वेदना-शमन, मार्गावरोध-निवारण तथा रक्तदुष्टि के उपचार में प्रभावी चिकित्सा पद्धति है।

**मुख्य शब्द:** गृध्रसी, साइटिका, शिरावेधन, रक्तमोक्षण, आयुर्वेद, वातव्याधि, वात-कफ।

**भूमिका**

**गृध्रसी का परिचय एवं महत्व**

वर्तमान समय में मानवीय जीवन शैली में आए तीव्र परिवर्तन दैनिक जीवन में अत्यधिक व्यस्तता, दीर्घकालिक आसीन कार्य-प्रणाली, अनुचित आहार-विहार, वाहन-चालन के दौरान उत्पन्न कम्पन, खेलों में होने वाली आकस्मिक चोटें तथा श्रम कार्यों में रीढ़ पर पड़ने वाला अत्यधिक भार इन कारणों से गृध्रसी (Sciatica) रोग की घटनाओं में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। यह रोग मुख्यतः 30 से 50 वर्ष के आयु वर्ग में अधिक पाया जाता है।<sup>[1]</sup>

गृध्रसी का नामकरण 'गृध्र' (गिद्ध) शब्द से हुआ है। इस व्याधि में रोगी की चाल गिद्ध के समान विकृत एवं कष्टकर हो जाती है। यह नाम स्वयं रोग की गंभीरता एवं पीड़ादायकता का परिचय देता है। आचार्य चरक ने इसे 'नानात्मज वात विकारों' में सम्मिलित किया है, जबकि आचार्य सुश्रुत ने वात नानात्मज रोगों की सूची में इसका स्वतंत्र उल्लेख किया है।<sup>[18]</sup>

**शिरावेधन का परिचय**

शिरावेधन, रक्तमोक्षण की पञ्च प्रमुख विधियों में से एक है। इसमें शस्त्र (सूची/शलाका) के माध्यम से शिरा का भेदन कर दुष्ट रक्त का निर्हरण किया जाता है। आचार्य सुश्रुत ने शिरावेधन को 'परमं शस्त्रकर्म' कहा है।<sup>[10]</sup>

गृध्रसी में वात एवं दुष्ट रक्त का संयोग शिरावेधन को विशेष रूप से संकेतित बनाता है। विभिन्न आयुर्वेदिक ग्रंथों में इसका स्पष्ट निर्देश मिलता है। प्रस्तुत समीक्षा में इन्हीं शास्त्रीय प्रमाणों का एकीकृत विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

**Correspondence:**

**डॉ. संतोष कुमार उपाध्याय**

शोधच्छात्र, पंचकर्म विभाग,

आयुर्वेद संकाय, चिकित्सा विज्ञान संस्थान,

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

## शोध का उद्देश्य

उद्देश्य: गृध्रसी के प्रबंधन में शिरावेधन की नैदानिक उपयोगिता का आयुर्वेदिक ग्रंथों के शास्त्रीय प्रमाणों के आधार पर एकीकृत विश्लेषण।

- गृध्रसी का शास्त्रीय स्वरूप निदान, सम्प्राप्ति, लक्षण एवं भेद का अध्ययन।
- शिरावेधन का ग्रंथीय वर्णन परिभाषा, विधि, संकेत, निषेध का संकलन।
- विभिन्न संहिताओं में शिरावेधन के तुलनात्मक विवेचन का विश्लेषण।
- गृध्रसी में शिरावेधन की चिकित्सीय युक्ति एवं शास्त्रीय तर्क की विवेचना।

## गृध्रसी का शास्त्रीय स्वरूप

### व्युत्पत्ति एवं परिभाषा

'गृध्रसी' = गृध्र (गिद्ध) + सी (स्त्री प्रत्यय)। इस नामकरण में रोग का सार निहित है, जिस प्रकार गिद्ध की गति वक्र एवं असामान्य होती है, उसी प्रकार इस व्याधि से पीड़ित रोगी की चाल विकृत हो जाती है।

स्फिक् पृष्ठ कटि गुदोरुजानु जङ्घा पादेष्वन्यतमे व्यथा। तोदः स्तम्भश्च स्पन्दश्च सा गृध्रसी नाम वातजा॥

चरक संहिता, चि.स्था. 28/56,<sup>[3]</sup>

व्याख्या: यह श्लोक गृध्रसी के मूल स्थान एवं लक्षणों का वर्णन करता है। स्फिक् (नितम्ब), पृष्ठ, कटि, गुद, ऊरु, जानु, जंघा एवं पाद में वेदना, तोद (सुई जैसी पीड़ा), स्तम्भ (जकड़न) एवं स्पन्दन (स्पंदन) ये चार प्रमुख लक्षण गृध्रसी को परिभाषित करते हैं।<sup>[3]</sup>

### गृध्रसी के प्रकार

#### वातज गृध्रसी

स्फिक् पृष्ठ कटि गुदोरुजानु जङ्घा पादेष्वन्यतमे व्यथा। तोदः स्तम्भश्च स्पन्दश्च सा गृध्रसी नाम वातजा॥

चरक संहिता, चि.स्था. 28/56- 57,<sup>[3]</sup>

वातज गृध्रसी में मुख्यतः तीव्र वेदना, जकड़न, स्पन्दन एवं भेदन का अनुभव होता है। यह शुष्क वात के प्रकोप से उत्पन्न होती है।<sup>[3]</sup>

#### वातकफज गृध्रसी

तन्द्रा गौरवमङ्गेषु कफोऽपि च विशेषतः। वातकफ बलं च गृध्रसी स्याद् विशेषतः॥ माधव निदान, अ. 22/65, [6]

वातकफज प्रकार में तन्द्रा (निद्राभाव), गौरव (भारीपन), शीतलता तथा जड़ता अतिरिक्त लक्षण के रूप में मिलते हैं। इसमें कफ का आवरण वात को अवरुद्ध करता है, जो चिकित्सा को अधिक जटिल बनाता है।<sup>[6]</sup>

### निदान

चरक के अनुसार वातप्रकोपक निदानः<sup>[18]</sup>

- अत्यधिक रूक्ष, शीत, लघु, कटु, तिक्त आहार का सेवन
- दीर्घकालीन आसन (बैठना) एवं शयन की विकृत अवस्थाएँ
- वेग-धारण (मल, मूत्र, अपान वायु आदि)
- अत्यधिक श्रम, उपवास, आघात
- रात्रि-जागरण एवं अनियमित दिनचर्या

### सम्प्राप्ति

वातः कुपितः श्रोण्यां संश्रित्य सन्धि-स्नायु-शिरा-प्रतानान्। कटि-जानु-जङ्घा-पादमाविश्य वेदनां जनयति॥

अष्टांग हृदयम्, नि.स्था. 15/40- 41<sup>[5]</sup>

सम्प्राप्ति-घटकः प्रकुपित वात दोष → श्रोणि प्रदेश में संचय → कटि-स्नायु-शिरा-अस्थि का आश्रय → जंघा, जानु, जंघापृष्ठ, पिण्डली होते हुए पादांगुलि पर्यन्त प्रसार → तोद, स्तम्भ, स्पन्दन, रोमहर्षण।<sup>[5]</sup>

रक्त एवं वात का सम्बन्धः सुश्रुत ने स्पष्ट किया है कि रक्त वात का स्वाभाविक वाहन है। जब रक्त दुष्ट होता है, तो वात का अनुलोम गति बाधित होती है एवं व्याधि तीव्र हो जाती है।<sup>[22]</sup>

### दोष-दुष्य विचार

दोषः वात (प्रधान), कफ (अनुबंध)। दुष्यः स्नायु, शिरा, मांस, अस्थि। अधिष्ठानः कटि, श्रोणि, ऊरु, जानु, जंघा, पाद।

### शिरावेधन का शास्त्रीय स्वरूप

#### परिभाषा एवं व्युत्पत्ति

शिराभिश्च विमोक्षणम्। सुश्रुत संहिता, सू.स्था. 14/25,<sup>[10]</sup>

'शिरावेधन' = शिरा (नाडी/वाहिनी) + वेधन (भेदन)। शिरा का शस्त्र से भेदन कर दुष्ट रक्त का मोक्षण ही शिरावेधन है। सुश्रुत संहिता में इसे रक्तमोक्षण की श्रेष्ठतम विधि माना गया है।<sup>[10]</sup>

#### रक्तमोक्षण में शिरावेधन का स्थान

रक्तमोक्षण की पञ्च विधियाँ (1) शिरावेधन, (2) सूची-वेधन, (3) श्रृंगावचारण, (4) जलौकावचारण, (5) अलाबू। इनमें शिरावेधन सर्वाधिक प्रत्यक्ष एवं गहन प्रभाव वाली विधि है।<sup>[12]</sup>

शिरावेधः परमं कर्म, रक्तमोक्षणमुत्तमम्। येन सर्वाः क्रियाः सिद्ध्यन्ति देहे कुपितशोणिते॥

सुश्रुत संहिता, सू.स्था. 14 (भावार्थ),<sup>[10]</sup>

#### संकेत

सुश्रुत ने निम्न स्थितियों में शिरावेधन संकेतित किया है:<sup>[19]</sup>

- दुष्ट रक्तजन्य व्याधियाँ विसर्प, व्रण, कुष्ठ
- वात-रक्त (Gout) एवं वातव्याधि विशेषतः गृध्रसी
- मार्गावरोध सहित तीव्र वेदना
- स्नायु-शिरा में आवृत वात
- रक्तसंचार अवरुद्ध प्रदेश

## निषेध एवं सावधानियाँ

बालवृद्धगर्भिणीसु क्षीणे भीरौ च वर्जयेत्। रक्तपित्ते तथातिस्थूले  
शिरावेधं न कारयेत्॥

निषेधः बाल (अल्पवयस्क), वृद्ध, गर्भिणी, अत्यन्त कृश, रक्तपित्त  
रोगी, तीव्र भय से पीड़ित। इन स्थितियों में शिरावेधन वर्जित है।<sup>[19]</sup>

सुश्रुत संहिता, सू.स्था. 14 (भावार्थ),<sup>[19]</sup>

## शिरावेधन विधि

सुश्रुत के अनुसार विधि-क्रमः<sup>[11]</sup>

- स्थान-चयन: उचित शिरा का चयन वेध्य-अवेध्य विचार
- पूर्व-कर्म: स्नेहन-स्वेदन से शिरा को स्पष्ट करना
- वेधन: उचित शस्त्र (सूची) से शिरा का भेदन
- रक्त-निर्हरण: दुष्ट रक्त का अनुमानित परिमाण में निर्गमन
- पश्चात्-कर्म: व्रण-परिचर्या, संशमन औषध

## वेध्य-अवेध्य शिराएँ

शतं सप्त च सप्त च शिराणाम् मर्मस्थाः न वेध्याः।

सुश्रुत संहिता, शा.स्था. 9/3- 12 (भावार्थ),<sup>[11]</sup>

सुश्रुत ने 700 शिराओं में से 107 मर्मशिराओं को अवेध्य बताया है।  
गृध्रसी में प्रयोज्य शिराएँ अन्तराकन्दर (popliteal region), गुल्फ  
(ankle), ऊरुमध्य वेध्य श्रेणी में हैं।<sup>[11]</sup>

## गृध्रसी में शिरावेधन का नैदानिक महत्व

### गृध्रसी में शिरावेधन का प्रत्यक्ष उल्लेख

अन्तराकन्दरागुल्फं सिरां बस्त्यग्निकर्म च। गृध्रसीषु प्रयुञ्जीत एतत्  
कर्म विशेषतः॥ चरक संहिता, चि.स्था. 28/101,<sup>[7]</sup>

अर्थ: गृध्रसी रोगियों में अन्तराकन्दर (घुटने के पीछे, popliteal  
fossa) एवं गुल्फ (टखने) की शिराओं का वेधन, बस्ति एवं अग्निकर्म  
इन तीनों का प्रयोग विशेष रूप से करना चाहिए। यह श्लोक चरक  
संहिता में गृध्रसी-चिकित्सा का सर्वाधिक प्रत्यक्ष निर्देश है।<sup>[7]</sup>

यह श्लोक शिरावेधन की स्थान-विशेषता को भी बताता है  
'अन्तराकन्दर' एवं 'गुल्फ'। ये दोनों स्थान sciatic nerve के मार्ग  
पर स्थित हैं, जो शास्त्रीय एवं आधुनिक दोनों दृष्टियों से महत्वपूर्ण  
हैं।

## सुश्रुत के अनुसार

कटिपृष्ठे स्फुरति शूलं तोडस्तम्भगौरवम्। जङ्घायाः पृष्ठतो गत्वा  
पादाङ्गुष्ठेषु तिष्ठति॥ सुश्रुत संहिता, नि.स्था. 1/72- 73,<sup>[4]</sup>

सुश्रुत ने गृध्रसी के उपचार में रक्तमोक्षण का स्पष्ट निर्देश दिया है।  
उनके अनुसार जहाँ रक्त एवं वात दोनों दूषित हों, वहाँ शिरावेधन से  
रक्त का निर्हरण करना आवश्यक है। शल्यतंत्र की परंपरा में  
शिरावेधन सर्वोच्च चिकित्सा मानी गई है।<sup>[4][14]</sup>

## अष्टांग हृदयम् के अनुसार

गृध्रसी तु जङ्घायाः पृष्ठतोऽधः क्रमं गता। रूक् तोड स्तम्भ गौरव  
स्पन्दनैः पीडयत्यधः॥ अष्टांग हृदयम्, नि.स्था. 15/40- 41,<sup>[5]</sup>

वाग्भट्ट ने गृध्रसी की सम्प्राप्ति एवं लक्षणों का विस्तृत वर्णन करते हुए  
रक्तमोक्षण को स्नेहन-स्वेदन के पश्चात् की जाने वाली प्राथमिक  
चिकित्सा बताया है। वातकफज प्रकार में शिरावेधन से मार्ग-शोधन  
होता है जिससे वात का अनुलोमन संभव होता है।<sup>[5][20]</sup>

## माधव निदान के अनुसार

रूक् तोड स्तम्भ गौरव स्पन्दनं च विशेषतः। जङ्घायाः पृष्ठतो गत्वा  
पादाङ्गुष्ठान्तमाप्नुयात्॥ माधव निदान, अ. 22/63- 65,<sup>[6]</sup>  
माधवकर ने गृध्रसी के विस्तृत निदान में रक्तदुष्टि की भूमिका को  
स्वीकार किया है। जहाँ रक्त-वात का सम्मिश्रण हो, वहाँ शिरावेधन  
अनिवार्यतः संकेतित होता है।<sup>[6][21]</sup>

## तुलनात्मक सारणी: विभिन्न ग्रंथों में गृध्रसी एवं शिरावेधन

ग्रंथ	स्थान/ अ.सं.	श्लोक सं.	गृध्रसी वर्णन	शिरावेधन संदर्भ	चिकित्सीय निष्कर्ष
भस्कर संहिता	चि.स्था., अ.	56-58, 28	रूक्, तोड, स्तम्भ, गौरव, स्पन्दन; कटि से पादांगुलि तक वेधना	अन्तराकन्दर-गुल्फ शिरावेधन; बस्ति, अग्निकर्म सहित	वातप्रधान गृध्रसी में शिरावेधन अनिवार्य
सुश्रुत संहिता	नि.स्था., अ.	72-73 1	कटिपृष्ठ में शूल, तोड, स्तम्भ, गौरव; जंघा-पाद तक प्रसार	रक्तमोक्षण, शिरावेधन; रक्त- वात दोष में विशेष उपयोग	शल्यतंत्र परंपरा में शिरावेधन सर्वोच्च
अष्टांग हृदयम्	नि.स्था., अ.	40-41 15	जंघा पृष्ठ से अधोभाग; रूक्, तोड, स्तम्भ, स्पन्दन	स्नेहन, स्वेदन के साथ रक्तमोक्षण-शिरावेधन	वातकफज में मार्गशोधन हेतु शिरावेधन
अष्टांग संग्रह	चि.स्था.	सत्याचन अपेक्षित	वातव्याधि अंगगत गृध्रसी; कफानुबंध में विशेष लक्षण	वातकफज गृध्रसी में शिरावेधन का निर्देश	कफावरण-वात में शिरावेधन प्रभावी
माधव निदान	नि.अ. 22	63-65	रूक्, तोड, स्तम्भ, गौरव, स्पन्दन; पादांगुलि पर्यन्त	निदान में रक्तदुष्टि; शिरावेधन परोक्षतः सूचित	दोषानुसार चिकित्सा निर्देश
भावप्रकाश	मध्यमखण्ड	सत्याचन अपेक्षित	वातव्याधि परिप्लव मं गृध्रसी लक्षण	रक्तमोक्षण, शिरावेधन सहित संपूर्ण चिकित्सा	पूर्वोक्त परंपरा का संग्रह एवं पृष्टि
भैषज्य रत्नावली	वातव्याधि अ.	सत्याचन अपेक्षित	गृध्रसी में पंचकर्म समूह	शिरावेधन, बस्ति, अग्निकर्म का समन्वय	व्यापक चिकित्सा योजना में शिरावेधन

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि सभी प्रमुख आयुर्वेदिक ग्रंथों में गृध्रसी के संदर्भ में शिरावेधन की अनुशंसा प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में की गई है। चरक सर्वाधिक स्पष्ट निर्देश देते हैं, जबकि सुश्रुत शल्यतंत्रीय विधि की दृष्टि से सर्वाधिक विस्तृत हैं।

### विमर्श

#### गृध्रसी की रोगोत्पत्ति में रक्त-वात संयोग एवं शिरावेधन की युक्ति

वातस्य रक्तमाश्रयः, रक्ते दुष्टे वातोऽपि दुष्यति। तस्माद् रक्तस्य शोधनं वाताय च हिताय च॥

चरक संहिता, सू.स्था. 17/43 (भावार्थ),<sup>[22]</sup>

चरक ने स्पष्ट कहा है कि रक्त वात का आश्रय-स्थान है। जब रक्त दुष्ट होता है, वात भी उसके साथ दूषित होकर कुपित हो जाता है। गृध्रसी में यही प्रक्रिया होती है रक्त में दोष संचय → वात का आवरण → मार्ग में अवरोध → वेदना, स्तम्भ, स्पन्दन।<sup>[22]</sup>

शिरावेधन इस श्रृंखला को ठीक उसके मूल कारण दुष्ट रक्त पर आक्रमण करके तोड़ता है। दुष्ट रक्त का निर्हरण होने से वात को पुनः स्वाभाविक गति मिलती है और रोग के लक्षण शांत होते हैं।

#### वात-कफ शमन में शिरावेधन की भूमिका

वातकफज गृध्रसी में कफ का आवरण वात को और अधिक प्रकुपित करता है। इस स्थिति में केवल वात-शामक चिकित्सा पर्याप्त नहीं होती। शिरावेधन से कफ-दुष्ट रक्त का निर्हरण होता है, मार्ग स्वच्छ होता है एवं वात को अनुलोम गति प्राप्त होती है।<sup>[15]</sup>

अष्टांग हृदयम् में वाग्भट्ट ने कहा है कि जहाँ कफ से मार्ग अवरुद्ध हो, वहाँ आवरण-कारक का पहले निवारण करना आवश्यक है। इसी सिद्धान्त के अनुसार वातकफज गृध्रसी में शिरावेधन की भूमिका और अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाती है।<sup>[20]</sup>

#### मार्गावरण सिद्धान्त एवं शिरावेधन

आवृतो हि वायुः कुर्याद् व्याधीन् बहुविधांश्च सः। तस्माद् आवरणं ज्ञात्वा तदेव प्रथमं जयेत्॥

अष्टांग हृदयम्, नि.स्था. (भावार्थ),<sup>[13]</sup>

इस सिद्धान्त के अनुसार आवृत वात की चिकित्सा में सर्वप्रथम आवरण-कारक (रक्त/कफ) का निराकरण आवश्यक है। शिरावेधन यही कार्य करता है रक्त-कफ का निर्हरण कर वात का मार्ग मुक्त करता है।<sup>[13]</sup>

#### दर्द – निवारण की शास्त्रीय युक्ति

चरक ने दुःखात्मक वेदना के मूल कारण को 'वायुकृत' बताया है। गृध्रसी में वेदना शमन के लिए वात-अनुलोमन आवश्यक है। शिरावेधन से:<sup>[3]</sup>

- दुष्ट रक्त का निर्हरण → मार्ग-शोधन
- वात को स्वाभाविक गति → दर्द – निवारण
- शिरा में रक्तसंचार सुधार → स्नायु-पोषण
- स्तम्भ एवं स्पन्दन में कमी → गतिशीलता में सुधार

#### शास्त्रीय मतों का तुलनात्मक विश्लेषण

चरक बनाम सुश्रुत: चरक कायचिकित्सा की दृष्टि से शिरावेधन के स्थान (अन्तराकन्दर, गुल्फ) का स्पष्ट निर्देश देते हैं। सुश्रुत शल्यतंत्रीय परंपरा से विधि की विस्तृत व्याख्या करते हैं।

वाग्भट्ट का समन्वय: अष्टांग हृदयम् में वाग्भट्ट दोनों परंपराओं का समन्वय करते हैं वात-कफज गृध्रसी में पहले स्नेहन-स्वेदन, फिर शिरावेधन द्वारा मार्ग-शोधन, तत्पश्चात् बस्ति चिकित्सा।<sup>[5][20]</sup>

माधवकर का योगदान: माधव निदान में दोनों प्रकारों का विभेद एवं रक्त-वात सम्बन्ध का विश्लेषण शिरावेधन के औचित्य को और अधिक सुदृढ़ करता है।<sup>[6]</sup>

**निष्कर्ष:** प्रस्तुत एकीकृत समीक्षा के आधार पर यह शास्त्रीय निष्कर्ष प्राप्त होता है कि गृध्रसी मूलतः एक वातप्रधान व्याधि है, जिसमें रक्त-वात तथा शिरा-स्नायु मुख्य दूष्य के रूप में विकृत होते हैं। इसके शास्त्रीय प्रबंधन के अंतर्गत, चरक संहिता में 'अन्तराकन्दर-गुल्फ' शिरावेधन का स्पष्ट निर्देश प्राप्त होता है, जबकि सुश्रुत संहिता में रक्त-वात के अंतर्संबंध एवं शिरावेधन की संपूर्ण विधि का विस्तृत रूप से वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त, अष्टांग हृदयम् एवं माधव निदान जैसे प्रमुख ग्रंथों में गृध्रसी के वातकफज प्रकार में मार्गशोधन हेतु शिरावेधन को विशेष रूप से अनुशंसित किया गया है। भावप्रकाश एवं भैषज्य रत्नावली जैसे परवर्ती ग्रंथों ने भी इसी प्राचीन परंपरा का संकलन करते हुए शिरावेधन की प्रामाणिकता की पुष्टि की है। समग्र रूप से देखा जाए तो, सभी प्रमुख आयुर्वेद ग्रंथों में शिरावेधन, बस्ति एवं अग्निकर्म के समन्वित प्रयोग को गृध्रसी की चिकित्सा में सर्वाधिक प्रभावी माना गया है। अतः शास्त्रीय प्रमाणों के आधार पर यह निर्विवाद रूप से सिद्ध होता है कि शिरावेधन, गृध्रसी के प्रबंधन में एक अत्यंत युक्तिसंगत, प्रामाणिक एवं अनिवार्य चिकित्सा पद्धति है।

- संदर्भ:**
- [1] चरक संहिता, चिकित्सा स्थान, 28, श्लोक 56- 58, चक्रपाणि टीका सहित, सम्पा. पं. कासीनाथ शास्त्री एवं गोरखनाथ चतुर्वेदी, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, पुनर्मुद्रण 2017, पृ. 618।
- [2] माधव निदान (रोगविनिश्चय), वातव्याधि निदान, 22, श्लोक 63- 65, मधुकोश एवं अतंकदर्पण टीका सहित, सम्पा. उपाध्याय यदुनन्दन, चौखम्भा संस्कृत भवन, वाराणसी, 2019, पृ. 560।
- [3] चरक संहिता, चिकित्सा स्थान, 28, श्लोक 56- 58, चक्रपाणि टीका सहित, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 2017, पृ. 618।
- [4] सुश्रुत संहिता, निदान स्थान, 1, श्लोक 72- 73, डल्हन टीका सहित, सम्पा. वैद्य जादवजी त्रिकमजी, चौखम्भा ओरिएंटालिया, वाराणसी, 2018, पृ. 271।
- [5] अष्टांग हृदयम्, निदान स्थान, 15, श्लोक 40- 41, अरुणदत्त एवं हेमाद्रि टीका सहित, सम्पा. भिषग्वर हरिशास्त्री परडकर, चौखम्भा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, 2016, पृ. 495।
- [6] माधव निदान, वातव्याधि निदान, 22, श्लोक 63- 65, मधुकोश टीका सहित, चौखम्भा संस्कृत भवन, वाराणसी, 2019, पृ. 560।
- [7] चरक संहिता, चिकित्सा स्थान, 28, श्लोक 101, चक्रपाणि टीका सहित, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 2017, पृ. 627।
- [8] Ropper, A. H., & Zafonte, R. D. Sciatica. New England Journal of Medicine, 2015; 372(13): 1240- 1248. <https://doi.org/10.1056/NEJMra1410151>
- [9] Stafford, M. A., Peng, P., & Hill, D. A. Sciatica: A review of history, epidemiology, pathogenesis, and the role of epidural steroid injection in management. British Journal of Anaesthesia, 2007; 99(4): 461- 473.
- [10] सुश्रुत संहिता, सूत्र स्थान, 14, श्लोक 25- 30, डल्हन टीका सहित, चौखम्भा ओरिएंटालिया, वाराणसी, 2018, पृ. 58- 60।
- [11] सुश्रुत संहिता, शारीर स्थान, 9, श्लोक 3- 12, (शिरा-वर्णन); डल्हन टीका, चौखम्भा ओरिएंटालिया, वाराणसी, 2018, पृ. 380- 385।
- [12] चरक संहिता, सूत्र स्थान, 24, श्लोक 4- 12, (रक्तमोक्षण वर्णन), चक्रपाणि टीका सहित, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 2017, पृ. 122- 124।
- [13] अष्टांग हृदयम्, सूत्र स्थान, 27, श्लोक 1- 10, (रक्तमोक्षण), अरुणदत्त टीका, चौखम्भा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, 2016, पृ. 310- 315।
- [14] सुश्रुत संहिता, चिकित्सा स्थान, 5, श्लोक 10- 18, (वातव्याधि चिकित्सा), डल्हन टीका, चौखम्भा ओरिएंटालिया, वाराणसी, 2018, पृ. 425- 430।
- [15] अष्टांग संग्रह, चिकित्सा स्थान, (वातव्याधि), इन्दु टीका सहित, चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी, 2008, पृ. (सत्यापन अपेक्षित)।
- [16] भावप्रकाश, मध्यमखण्ड, वातव्याधि प्रकरण, श्लोक (सत्यापन अपेक्षित), सम्पा. श्री ब्रह्मशंकर मिश्र, चौखम्भा संस्कृत भवन, वाराणसी, 2015।
- [17] भैषज्य रत्नावली, वातव्याधि, विद्योतिनी हिन्दी टीका सहित, सम्पा. सिद्धिनन्दन मिश्र, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2007, पृ. (सत्यापन अपेक्षित)।
- [18] चरक संहिता, चिकित्सा स्थान, 28, श्लोक 8- 17, (वातव्याधि निदान- सम्प्राप्ति), चक्रपाणि टीका, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 2017, पृ. 600- 605।
- [19] सुश्रुत संहिता, सूत्र स्थान, 14, श्लोक 25- 35, (वेध्य-अवेध्य शिरा), डल्हन टीका, चौखम्भा ओरिएंटालिया, वाराणसी, 2018, पृ. 58- 62।
- [20] अष्टांग हृदयम्, चिकित्सा स्थान, 21, श्लोक 1- 15, (वातव्याधि चिकित्सा), हेमाद्रि टीका, चौखम्भा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, 2016, पृ. 720- 730।
- [21] माधव निदान, वातव्याधि निदान, 22, श्लोक 1- 20, (वात-भेद), मधुकोश टीका, चौखम्भा संस्कृत भवन, वाराणसी, 2019, पृ. 545- 550।
- [22] चरक संहिता, सूत्र स्थान, 17, श्लोक 42- 46, (रक्त-वात सम्बन्ध), चक्रपाणि टीका, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 2017, पृ. 96।